विक्रम संवत-२०३५, श्रावण कृष्ण - ७, सोमवार, तारीख १-९-१९८०
वचनामृत- ३५२, ३५३ प्रवचन-२२

'द्रव्य से परिपूर्ण महाप्रभु हूँ, भगवान हूँ, कृतकृत्य हूँ' ऐसा मानते होने पर भी 'पर्याय में तो मैं पामर हूँ' ऐसा महामुनि भी जानते हैं।

गणधर भी कहते हैं कि 'हे जिनेन्द्र! मैं आपके ज्ञान को नहीं पा सकता। आपके एक समय के ज्ञान में समस्त लोकालोक तथा अपनी भी अनन्त पर्यायें ज्ञात होती हैं। कहाँ आपका अनन्त-अनन्त द्रव्य-पर्यायों को जाननेवाला अगाध ज्ञान और कहाँ मेरा अल्प ज्ञान! आप अनुपम आनन्दरूप भी सम्पूर्णतया परिणमित हो गये हैं। कहाँ आपका पूर्ण आनन्द और कहाँ मेरा अल्प आनन्द! इसी प्रकार अनन्त गुणों की पूर्ण पर्यायरूप से आप सम्पूर्णतया परिणमित हो गये हो। आपकी क्या महिमा करें ? आपको तो जैसा द्रव्य, वैसी ही एक समय की पर्याय परिणमित हो गयी है; मेरी पर्याय तो अनन्तवें भाग है।'

इस प्रकार प्रत्येक साधक, द्रव्य-अपेक्षा से अपने को भगवान मानता होने पर भी, पर्याय-अपेक्षा से—ज्ञान, आनन्द, चारित्र, वीर्य इत्यादि सर्व पर्यायों की अपेक्षा से—अपनी पामरता जानता है॥३५२॥

वचनामृत-३५२। **द्रव्य से...** मुख्य बात उठायी है। द्रव्य अर्थात् वस्तु अनादि-अनन्त। जो पर्याय एक समय की पलटती है, उसके पीछे द्रव्य त्रिकाल अपलटता है। ऐसा जो द्रव्य—वस्तु वह **द्रव्य से परिपूर्ण...** द्रव्य से तो मैं परिपूर्ण हूँ। **महाप्रभु हूँ,...** आहाहा! द्रव्य से-पदार्थ से-वस्तु से-चैतन्य ज्ञायक पदार्थ से-ज्ञायकभाव से तो मैं परिपूर्ण महाप्रभु हूँ। आहाहा! प्रत्येक आत्मा को ऐसा है। प्रत्येक प्रभु, उसका जो द्रव्य है वह महाप्रभु परिपूर्ण है। परिपूर्ण है और महाप्रभु है। आहाहा! यहाँ तो अपनी बात कही है न। हूँ। **द्रव्य से परिपूर्ण महाप्रभु हूँ,...** छूँ। ऐसे धर्मी-समयग्दृष्टि को यह भावना करनी। आहाहा!

भगवान हूँ,... द्रव्य से तो भगवान हूँ। भगवान और मेरे द्रव्य में कोई अन्तर नहीं है। आहाहा! **कृतकृत्य हूँ...** द्रव्य से तो कृतकृत्य हूँ। कुछ करने जैसा है, ऐसा द्रव्य में नहीं है। वह तो पर्याय में है। यह तो कृतकृत्य है। सब कार्य पूरे किये हैं। सब गुणों की शक्ति पूरी ही है। शक्ति। आहाहा! ऐसा मैं कृतकृत्य हूँ। इस प्रकार साधक जीव को पहले यह भावना करनी। आहाहा! **कृतकृत्य हूँ, ऐसा मानते होने पर भी...** ऐसा मानते होने पर भी **'पर्याय में तो मैं पामर हूँ'।** आहाहा! पर्याय कहाँ सर्वज्ञ की पर्याय और कहाँ मेरी पर्याय। अनन्त गुना अन्तर है। पर्याय में मैं पामर हूँ। द्रव्य से प्रभु हूँ, पर्याय से पामर हूँ। आहाहा! क्योंकि पर्याय में जब तक परिपूर्णता नहीं होती, जब तक परिपूर्ण नहीं होती, तब तक पामरता है। आहाहा! **ऐसा मानते होने पर भी 'पर्याय में तो मैं पामर हूँ'...** आहाहा! **ऐसा महामुनि भी जानते हैं।** ऐसा महामुनि गणधर चार ज्ञान और चौदह पूर्व की अन्तर्मुहूर्त में रचना करनेवाले, चार ज्ञान और चौदह पूर्व की अन्तर्मुहूर्त में रचना करनेवाले गणधर भी ऐसा मानते हैं, ऐसा महामुनि भी मानते हैं। इसलिए कहा कि महामुनि कौन? **गणधर भी कहते हैं...** आहाहा!

अपनी अन्तर की सनातन वस्तु अनादि-अनन्त ध्रुव की महिमा कभी आयी नहीं। सनातन परम सत्य, उसका भण्डार अन्दर में भरा है। उसकी महिमा, माहात्म्य कभी आया नहीं। पर्याय पर अनादि से खेल किया। आहा..! अनादि से पर्याय पर खेल किया, परन्तु पर्याय के सिवा अन्दर वस्तु भगवान परिपूर्ण है, उस पर दृष्टि दी नहीं।

गणधर भी कहते हैं कि 'हे जिनेन्द्र!.. हे परमात्मा! **मैं आपके ज्ञान को नहीं पा सकता।** आपके ज्ञान को नहीं पा सकता। आपके ज्ञान की परिपूर्णता कोई अचिंत्य महिमा (है)। सर्वज्ञ की पर्याय, ऐसी भाषा भले बोले, परन्तु सर्वज्ञ एक समय में कोई चमत्कारिक वस्तु है कि अपने सिवा सर्व लोकालोक भी (जाने), स्वयं स्वयं को भी जाने और उसको भी जाने। ऐसी कोई ताकत पर्याय की ताकत (है)। हे नाथ! आपकी पर्याय की ताकत के समक्ष... आहाहा! **मैं आपके ज्ञान को नहीं पा सकता।** आपके ज्ञान की परिपूर्णता मैं पा सकता नहीं। आहाहा! द्रव्यस्वरूप भगवान परिपूर्ण आत्मा कृतकृत्य, उसको मैंने पाया। परन्तु आपकी पर्याय जो भगवान पर्याय है, उसको तो मैं नहीं पा सकता। अभी मेरी पर्याय में पामरता है। आहाहा!

नौवीं ग्रैवेयक मिथ्यादृष्टि होकर गया। बहुत क्रिया की और बहुत किया – ऐसा माना। बहुत किया – ऐसा माना। तब ज्ञानी कहते हैं कि मैं तो अभी पर्याय में अनन्तवें भाग में हूँ। कहाँ परमात्मा और कहाँ मैं! स्वामी कार्तिकेय में यह गाथा है। कार्तिकेयानुप्रेक्षा ग्रन्थ है, उसमें एक गाथा है। समकिती अपने को द्रव्य से तो प्रभु के रूप में स्वीकारते हैं, पर्याय में पामरता मानते हैं। अरे..! मुझे बहुत करना बाकी है। मुझे बहुत करना (बाकी है)। द्रव्य-ओर की वृत्ति झुकाववाली दशा, बहुत करनी है। मुझे बहुत बाकी है। आहाहा! मुनि भी ऐसा कहते हैं। द्रव्यदृष्टि से भले मैं परिपूर्ण हूँ, महाप्रभु हूँ, कृतकृत्य हूँ। परन्तु पर्याय में अभी मुझे बहुत करना बाकी है। मुनि हुए तो भी। तीन कषाय का नाश (हुआ है)। गणधर चार ज्ञान (धारी) और चौदह पूर्व की रचना अर्न्मुहूर्त में करनेवाले, वे भी ऐसा मानते हैं कि प्रभु! आपकी पर्याय करने में मैं अभी पामर हूँ। आहाहा! मुझे बहुत करना बाकी है। कहाँ केवलज्ञान और कहाँ मतिज्ञान। आहाहा!

धवल में लिया है कि जहाँ सम्यक् मतिज्ञान हुआ, (वह) केवलज्ञान को बुलाता है। ऐसी भाषा है, केवलज्ञान को बुलाता है, अरे..! प्रभु! अब आओ। मैं अल्प ज्ञान में कब तक रहूं? मेरी चीज़ प्रभु महाप्रभु और पर्याय में पामरता, मैं कब तक रहूँ? आहाहा! प्रभुता पूर्णता महाप्रभु हूँ। वह तो शक्ति-वस्तु के स्वभाव से महाप्रभु हूँ। परन्तु पर्याय में, प्रभु! आहाहा!

हुं पामर शुं करी शकुं ऐवो नथी विवेक,
चरण शरण धीरज नथी मरण सुधीनी छेक॥

यह श्रीमद् में आता है। मरण पर्यन्त मुझ में पूर्ण स्थिरता आवे, ऐसी मुझमें अभी पामरता है। आहाहा! यहाँ तो साधारण कुछ करे तो ऐसा हो जाए कि बहुत किया। आहाहा! बहुत अनन्त बाकी है, भाई! चार ज्ञान उत्पन्न हो तो भी अनन्तवें भाग में अभी हुआ, अभी तो अनन्तगुना करना बाकी है। आहा..! यदि ऐसी दृष्टि हो तो उसे पर्याय में दीनता रहे, अभिमान न आये। आहाहा! मैं जानता हूँ, मैंने बहुत शास्त्र पढ़े हैं, ऐसा पर्याय में अभिमान न आये। आहाहा!

आपके एक समय के ज्ञान में... हे जिनेन्द्रदेव! **आपके एक समय के ज्ञान में**

समस्त लोकालोक तथा अपनी भी अनन्त पर्यायें... क्या कहा ? देखो ! क्योंकि प्रत्येक द्रव्य में प्रगटरूप अनन्त पर्यायें होती हैं। अल्पज्ञ प्राणी को भी अल्प अनन्त पर्याय रहती है। पर्याय की संख्या तो अनन्त है, परन्तु उसकी सामर्थ्यता अपूर्ण है। आहाहा ! समकिती को भी अनन्त पर्याय, जितने गुण है उतनी पर्याय प्रगट है। आहाहा ! एक पर्याय नहीं, अकेला सामान्य नहीं। सामान्य (अर्थात्) त्रिकाल जो कृतकृत्य प्रभु तो त्रिकाल ध्रुव (है)। परन्तु उसका स्वीकार करनेवाली वर्तमान एक समय में अनन्त पर्यायें हैं। अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. आहाहा ! समय एक, परन्तु पर्याय अनन्त... अनन्त... अनन्त है। जितने गुण हैं, उतनी पर्यायें हैं। परन्तु उस पर्याय में पामरता है।

ज्ञान में समस्त लोकालोक तथा अपनी भी अनन्त पर्यायें... अनन्त पर्याय ली न ? प्रगट अनन्त पर्याय है। केवलज्ञानी को भी अनन्त प्रगट पर्यायें हैं। आहाहा ! अरे.. ! निगोद का जीव लो। एक शरीर में अनन्त जीव, फिर भी उसकी प्रगट पर्याय अनन्त है। बराबर है ? आहाहा ! क्योंकि गुण अनन्त हैं, तो पर्याय भी बाहर अनन्त प्रगट है। अनन्त पर्याय बिना का कोई द्रव्य कभी होता ही नहीं। आहाहा ! निगोद में अक्षर के अनन्तवें भाग में विकास है। फिर भी पर्याय की संख्या अनन्त है। आहाहा ! क्योंकि गुण अनन्त हैं। भले हीन है, कमजोर है, परन्तु पर्याय की संख्या अनन्त हैं। आहाहा ! क्योंकि प्रत्येक द्रव्य में सामान्य गुण जो अनन्त हैं, तो उसकी विशेष पर्याय बिना वह सामान्य रहता नहीं। आहाहा ! निगोद में अनन्त पर्याय, अनन्त।

यहाँ तो कहते हैं, हे नाथ ! **कहाँ आपका अनन्त-अनन्त द्रव्य-पर्यायों को जाननेवाला अगाध ज्ञान और कहाँ मेरा अल्प ज्ञान!** आहाहा ! विशेष में प्रभु ! बहुत अन्तर है। सामान्य में आप (और मैं) समान हैं। सामान्य अर्थात् द्रव्यस्वभाव, गुणस्वभाव-शक्तिस्वभाव, सत् का त्रिकाली सनातन सत्त्व, यह समान है। यह प्रत्येक प्राणी-प्रत्येक आत्मा का समान है। निगोद से लेकर सिद्ध, सबका समान है। आहाहा ! पर्याय में बहुत अन्तर है। आहा.. ! है पर्याय भले अनन्तव की संख्या, परन्तु उस पर्याय में प्रभु ! आपके आगे मैं अल्प हूँ। ऐसा गणधरदेव कहते हैं। **अगाध ज्ञान और कहाँ मेरा अल्प ज्ञान!**

आप अनुपम आनन्दरूप भी... अनुपम आनन्दरूप भी **सम्पूर्णतया परिणमित हो गये हैं।** आहाहा ! क्या कहते हैं अब ? आनन्द के साथ मिलान करते हैं। आह.. ! आप

अनुपम-उपमा न दे सके ऐसा कोई अतीन्द्रिय आनन्द.. आहाहा! द्रव्य का स्वभाव जो अतीन्द्रिय आनन्द, उस आनन्दरूप भी सम्पूर्णतया परिणमित हो गये हैं। आनन्द भी आपको सम्पूर्ण परिणमित हो गया है। अनन्त पर्याय में आनन्द भी एक पर्याय है। भगवान में अनन्त पर्याय प्रगट हुई, उसमें आनन्द भी एक पर्याय है। आनन्द एक पर्याय सम्पूर्ण प्रगट हुई है। आहाहा! **सम्पूर्णतया परिणमित हो गये हैं। कहाँ आपका पूर्ण आनन्द...** आहाहा! प्रभु! आपका कहाँ पूर्ण आनन्द **और कहाँ मेरा अल्प आनन्द!** आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द तो है। प्रगट अनन्त पर्याय है। उसमें आनन्द भी प्रगट पर्याय है। आहाहा! कहाँ मेरा अल्प आनन्द और कहाँ आपका पूर्ण आनन्द। आहाहा! इतनी नरमाई, निर्मानता। अभिमान न आने की यह चीज़ है। मेरी पर्याय में और प्रभु! आपकी पर्याय में अनन्त गुना अन्तर है। अनन्त गुनी पर्याय आपमें हुई हैं। आनन्द भी आपका पूर्ण आनन्द हुआ। प्रत्येक पर्याय पूर्ण हो गयी है। उसमें एक आनन्द नाम की पर्याय भी आपकी पूर्ण हो गयी है। आहाहा! समझ में आया?

प्रभु को तो अनन्त गुण की अनन्ती पर्यायें प्रगट पूर्ण हो गयी है। निगोद में एक जीव को अनन्त गुण की अनन्ती पर्यायें प्रगट हैं। परन्तु अक्षर के अनन्तवें भाग में। आहाहा! बहुत अल्प। और कहाँ परमात्मा! उनकी पर्याय। पर्याय बिना का द्रव्य तो कभी होता नहीं। आहाहा! विशेष बिना अकेला सामान्य तो कभी होता नहीं। विशेष पर्याय निगोद में भी अनन्त है और केवलज्ञान की अनन्त है। संख्या में अनन्त, परन्तु सामर्थ्य में अनन्तगुना अन्तर। आहाहा! कहाँ प्रभु मेरा आनन्द और कहाँ प्रभु आपका आनन्द! आहाहा!

कहाँ आपका पूर्ण आनन्द और कहाँ मेरा अल्प आनन्द! इसी प्रकार अनन्त गुणों की पूर्ण.... जैसे आनन्द की एक पर्याय भी मेरी अल्प और आपकी अनन्त, वैसे सब पर्याय आपकी अनन्त (प्रगट हो गयी है।) है? **इसी प्रकार अनन्त गुणों की पूर्ण पर्यायरूप से आप सम्पूर्णतया परिणमित हो गये हो।** पर्याय में परिणमित हो गये हैं। आहाहा! यह परमात्मा! एक द्रव्य, हों! एक द्रव्य आत्मा। ऐसे-ऐसे अनन्त परमात्मा। आहाहा! **आपकी क्या महिमा करें?** पूर्ण पर्यायरूप से आप सम्पूर्णतया परिणमित हो गये हो। आहाहा! **आपकी क्या महिमा करें? आपको तो जैसा द्रव्य, वैसी ही एक...** आपको तो जैसा द्रव्य-वस्तु (है), **वैसी ही एक समय की पर्याय परिणमित हो गयी है;...**

आहा..! पूर्ण। ऐसा कहते हैं। जैसा द्रव्य है, वैसी ही एक समय की पर्याय में परिपूर्ण परिणमित हो गयी है। भले एक समय हो। आहाहा! द्रव्य है, वह तो अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. गुणों का पिण्ड (है)। परन्तु जैसा द्रव्य है, जितने अनन्त गुण हैं, उतनी प्रगट पर्याय परिणमित हो गयी है। अनन्ती पर्यायें भगवान को परिणमित हो गयी हैं। आहाहा! यह अरिहन्त का रूप। णमों अरिहन्ताणं बोले, परन्तु उनको गुण कितने, पर्याय कितनी, पर्याय का सामर्थ्य कितना, वह खबर नहीं होती। आहाहा!

मेरी पर्याय तो अनन्तवें भाग है। आहाहा! अनन्तवें भाग है। आहाहा! आपको जो आनन्द की पूर्ण पर्याय हो गयी, उससे तो मेरी आनन्द की पर्याय अल्प है, परन्तु सब पर्याय, आनन्द के साथ जितनी पर्याय अनन्त गुण की है, सब आपकी पूर्ण है और मेरी अल्प है। मेरी भी सब गुण की पर्याय तो है, (परन्तु) अल्प है। क्योंकि द्रव्य है, वह कभी पर्याय बिना नहीं रहता। तो मेरे में पर्याय है, परन्तु प्रभु! आपके समक्ष तो अनन्तवें भाग है। आहाहा! संख्या से अनन्त, सामर्थ्य से अल्प। आहाहा! प्रभु का पर्याय सामर्थ्य अनन्त, संख्या भी अनन्त। पर्याय अनन्त और उनकी एक-एक पर्याय का सामर्थ्य भी अनन्त। आहाहा! यह अरिहन्त, यह जिनेन्द्र देव! आहाहा!

इस प्रकार प्रत्येक साधक,... प्रत्येक साधक। चौथे गुणस्थान से लेकर प्रत्येक साधक। **द्रव्य-अपेक्षा से अपने को भगवान मानता होने पर भी,...** आहाहा! वस्तु-अपेक्षा से अपने को भगवान मानता होने पर भी। आहाहा! साधकजीव-मोक्ष का साधकजीव-मोक्षमार्ग का साधकजीव-अपने को... आहाहा! भगवान मानता होने पर भी। द्रव्य से तो मैं भगवान परिपूर्ण हूँ। **पर्याय-अपेक्षा से—ज्ञान, आनन्द, चारित्र, वीर्य इत्यादि...** इत्यादि अनन्त-अनन्त पर्याय प्रभु! आहाहा! आपके द्रव्य-गुण की बात तो क्या करनी! क्योंकि द्रव्य-गुण तो मेरा भी ऐसा है। आहाहा! परन्तु पर्याय प्रगट हुई, उसका क्या करना? आपकी पर्याय प्रभु! अनन्तगुनी प्रगट हो गयी है। आहाहा! **सर्व पर्यायों की अपेक्षा से—अपनी पामरता जानता है।** कौन? साधक। प्रत्येक साधक। चौथे, पाँचवें, छठे (गुणस्थानवर्ती)। बाद में तो ध्यान में होता है। आहाहा!

आत्मज्ञान हुआ, आत्मा को भगवान माना, परन्तु पर्याय में तो पामरता मानी।

आहाहा! प्रत्येक साधक इस प्रकार अपने को द्रव्य से भगवान, पर्याय से पामर (मानता है)। आहाहा! यह श्लोक स्वामी कार्तिकेय में है। मूल श्लोक। साधकजीव अपने को परिपूर्ण प्रभु मानते हैं, द्रव्य-अपेक्षा से। आहाहा! वस्तु-अपेक्षा से तत्त्व का जो सत् है, चैतन्य सत् है, सत् है, वह सत् है तो परिपूर्ण है। आहाहा! भले अनन्त गुण हैं, परन्तु अनन्त गुण सत् परिपूर्ण है। द्रव्य-अपेक्षा से प्रत्येक जीव में। पर्याय में पामरता में अन्तर है। आहाहा! अरे..! उसने कब उसका विचार किया है कि मैं क्या हूँ? मेरी सत्ता अनन्त। भगवान की सत्ता है, वैसी मेरी है। परमात्मा की द्रव्य की जैसी सत्ता है, ऐसी सत्ता मेरी है। ऐसा ही सत्त्व मेरा है। पर्याय में मेरी पामरता है, यह मैं जानता हूँ। आहाहा!

सर्व पर्यायों की अपेक्षा से—अपनी पामरता जानता है। देखो! **आनन्द, चारित्र, वीर्य इत्यादि सर्व पर्यायों की...** अनन्त पर्याय के आगे... आहाहा! उसकी अपेक्षा से **अपनी पामरता जानता है।** आहाहा! द्रव्य और पर्याय, बस दो। दूसरी कोई चीज़ तो मेरे में है नहीं। आहा..! दो सिवा तीसरी चीज़ तो यहाँ है ही नहीं। दो में एक प्रभु है और एक पामर है। आहाहा! अनन्त-अनन्त गुण, जिसकी संख्या का पार नहीं, उतनी पर्याय प्रगट है। जितने गुण हैं, उतनी पर्याय प्रगट है। अनन्त पर्यायें प्रगट हैं। सामान्य त्रिकाल जो अनन्त गुणरूप है, उसकी अनन्त पर्यायें सब जीव को प्रगट है। अज्ञानी को भी अनन्त पर्यायें प्रगट है। आहाहा! परन्तु विपरीत। मान्यता विपरीत। मैं पर का कर्ता हूँ, पर से मुझे लाभ होता है, पर को मैं लाभ दे सकता हूँ। आहाहा! पर को लाभ नहीं दे सकता? आहा..! तो शास्त्र क्यों कहने? कौन कहता है? प्रभु! उस समय भाषा की पर्याय होने की है तो होती है। आत्मा से होती नहीं। आहाहा! जिस समय जो भाषा की वर्गणा, जिस प्रकार परिणमित होनेवाली है, उस समय उसरूप परिणमती है। आहाहा! आत्मा उस जड़ की पर्याय का कर्ता नहीं। हाँ, वह अनन्त-अनन्त पर्याय का जाननेवाला है। जानने में कमी कुछ नहीं। कर्ता में एक राग का भी कर्ता नहीं। राग के कण का भी कर्ता नहीं। आहाहा! ऐसी बात। आहाहा! **अपनी पामरता जानता है।** आहाहा! ३५२ (पूरा हुआ)। ३५३। है न ३५३?

सर्वोत्कृष्ट महिमा का भण्डार चैतन्यदेव अनादि-अनन्त परमपारिणामिक -भाव में स्थित है। मुनिराज ने (नियमसार के टीकाकार श्री पद्मप्रभमलधारिदेव ने) इस परमपारिणामिक भाव की धुन लगायी है। यह पंचम भाव पवित्र है, महिमावन्त है। उसका आश्रय करने से शुद्धि के प्रारम्भ से लेकर पूर्णता प्रगट होती है।

जो मलिन हो, अथवा जो अंशतः निर्मल हो, अथवा जो अधूरा हो, अथवा जो शुद्ध एवं पूर्ण होने पर भी सापेक्ष हो, अध्रुव हो और त्रैकालिक-परिपूर्ण-सामर्थ्यवान न हो, उसके आश्रय से शुद्धता प्रगट नहीं होती; इसलिये औदयिकभाव, क्षायोपशमिकभाव, औपशमिकभाव और क्षायिकभाव अवलम्बन के योग्य नहीं हैं।

जो पूरा निर्मल है, परिपूर्ण है, परम निरपेक्ष है, ध्रुव है और त्रैकालिक-परिपूर्ण-सामर्थ्यमय है—ऐसे अभेद एक परमपारिणामिकभाव का ही—पारमार्थिक असली वस्तु का ही—आश्रय करने योग्य है, उसी की शरण लेने योग्य है। उसी से सम्यग्दर्शन से लेकर मोक्ष तक की सर्व दशाएँ प्राप्त होती हैं।

आत्मा में सहजभाव से विद्यमान ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्द इत्यादि अनन्त गुण भी यद्यपि पारिणामिकभावरूप ही हैं, तथापि वे चेतनद्रव्य के एक-एक अंशरूप होने के कारण उनका भेदरूप से अवलम्बन लेने पर साधक को निर्मलता परिणमित नहीं होती।

इसलिए परमपारिणामिकभावरूप अनन्तगुण-स्वरूप अभेद एक चेतनद्रव्य का ही-अखण्ड परमात्मद्रव्य का ही-आश्रय करना, वहीं दृष्टि देना, उसी की शरण लेना, उसी का ध्यान करना, कि जिससे अनन्त निर्मल पर्यायें स्वयं खिल उठें।

इसलिए द्रव्यदृष्टि करके अखण्ड एक ज्ञायकरूप वस्तु को लक्ष्य में लेकर उसका अवलम्बन करो। वही, वस्तु के अखण्ड एक परमपारिणामिक -भाव का आश्रय है। आत्मा अनन्त गुणमय है परन्तु द्रव्यदृष्टि गुणों के भेदों का

ग्रहण नहीं करती, वह तो एक अखण्ड त्रैकालिक वस्तु को अभेदरूप से ग्रहण करती है।

यह पंचम भाव पावन है, पूजनीय है। उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, सच्चा मुनिपना आता है, शान्ति और सुख परिणमित होता है, वीतरागता होती है, पंचम गति की प्राप्ति होती है॥३५३॥

३५३। **सर्वोत्कृष्ट महिमा का भण्डार...** आहाहा! सर्वोत्कृष्ट-सर्व से उत्कृष्ट महिमा का भण्डार। आहा..! **चैतन्यदेव...** आहाहा! जगत के चाहे जितने भण्डार हो, हीरा-माणेक से लाखों योजन भरे हो, लाखों योजन में हीरा-माणेक (भरे हो), अरे..! असंख्य योजन में माणिक (हो)। स्वयंभूरमणसमुद्र। स्वयंभूरमणसमुद्र में असंख्य योजन में हीरा और माणेक भरे हैं। नीचे रेत नहीं है। आहाहा! उसके आगे यहाँ **सर्वोत्कृष्ट महिमा का भण्डार...** मैं हूँ। स्वयंभूरमण समुद्र में असंख्य योजन में अकेले पत्थर के रत्न भरे हैं। पत्थर के रत्न। यह (आत्मा) चैतन्य रत्न। आहाहा!

उसके गुण की संख्या और उसकी पर्याय की संख्या विस्मयकारी है, आश्चर्यकारी है। कभी लक्ष्य में लिया नहीं। जितनी महिमा है, उतनी महिमा कभी की नहीं। उतनी महिमा करे तो सर्वोत्कृष्ट सम्यग्दर्शन हुए बिना रहे नहीं। आहाहा! समझ में आया? सर्वोत्कृष्ट महिमा का भण्डार। आहाहा! पूरी दुनिया का भण्डार हो, पैसा, लक्ष्मी, इज्जत-कीर्ति... स्वयंभूरमण समुद्र असंख्य योजन में है। आहाहा! असंख्य योजन में। ढाई द्वीप में जितने द्वीप-समुद्र हैं, दूसरे समुद्र से यह समुद्र तीन योजन अधिक है। एक ही। क्या कहा वह? जितने दरिया-समुद्र असंख्य हैं, उसकी संख्या के योजन से एक स्वयंभूरमण समुद्र की, सर्व असंख्य द्वीप-समुद्र के योजन से, तीन योजन अधिक है। सबसे तो समान, परन्तु तीन योजन अधिक है। आहाहा! वह अकेले रत्न से भरा है। वहाँ मनुष्य नहीं है, नहीं तो वहाँ लेने जाए। पशु है, पशु। मच्छ, मगरमच्छ। अरे..! उसमें समकिती असंख्य है। आहाहा! स्वयंभूरमण समुद्र में। देखते हैं, परन्तु पत्थर देखते हैं। मेरे आत्मा की चीज़ के समक्ष पूरी दुनिया पत्थर है, पत्थर। मैं एक आत्मा और पूरी दुनिया मेरे ज्ञान में एक समय का ज्ञेय। आहाहा! मैं एक निश्चयस्वरूप, पूरा लोकालोक मेरी अपेक्षा से सब व्यवहार है।

आहाहा! स्वआश्रय एक निश्चय, पराश्रय से जितने विकल्प उठे, वहाँ से लेकर पूरा लोकालोक, पंच परमेष्ठी वह भी व्यवहार है। एक ओर एक मैं आत्मा निश्चय एक और उसके सिवा अनन्त आत्मा और अनन्त रजकण, अनन्त परमेश्वर, सिद्ध... आहाहा! उससे भी सर्वोत्कृष्ट भण्डार मैं हूँ। आहाहा! है तो सबमें इतनी (सर्वोत्कृष्टता)।

सर्वोत्कृष्ट महिमा का भण्डार चैतन्यदेव... चैतन्यदेव। आहाहा! पामर प्राणी को कहते हैं कि तू चैतन्यदेव (है)। आहाहा! चैतन्य भगवान, चैतन्यदेव तू है,प्रभु! आहाहा! तुझे एक बीड़ी पीने में सन्तोष हो जाता है। तो अनन्त-अनन्त गुण का भण्डार चैतन्यदेव, तेरी दिव्य शक्ति का पार नहीं, नाथ! और तू उसकी महिमा में आ जाए, एक बीड़ी पीये उसमें। तलब लगी है। बहुत अच्छा। तू देव का देव चैतन्यदेव। आहाहा!

अनादि-अनन्त... चैतन्यदेव अनादि-अनन्त। है... है, उसकी आदि कहाँ? है, उसका अन्त कहाँ? और है, वह अनन्त स्वभाव से खाली कहाँ? वह लेते हैं, देखो! **अनादि-अनन्त परमपारिणामिकभाव में स्थित है।** वह भाव लिया। पहले काल लिया। चैतन्यदेव अनादि-अनन्त—वह काल। और मेरा भाव-**परमपारिणामिक -भाव में स्थित है।** आहाहा! अकेला पारिणामिक नहीं। अकेला पारिणामिक तो पर्याय को भी कहते हैं। यह तो परमपारिणामिकभाव। आहाहा! चैतन्यदेव अनादि-अनन्त अपने पारिणामिकभाव में स्थित है। आहाहा! अपना परमपारिणामिस्वभाव। पारिणामिक अर्थात् सहज स्वभाव। परम सहज स्वभाव अनन्त-अनन्त शक्ति का भण्डार, ऐसा परमस्वभाव सहज परिणाम, उसमें मैं स्थित हूँ। आहाहा! है?

मैं स्थित हूँ, ऐसा निर्णय पर्याय करती है। निर्णय पर्याय करती है। परन्तु पर्याय कहती है कि मैं यह हूँ। अनादि-अनन्त परमपारिणामिकभाव में मैं स्थित हूँ। आहाहा! यह शब्द सुने भी नहीं हो। पैसे के आगे कहाँ सुने? आहाहा! **सर्वोत्कृष्ट महिमा का भण्डार चैतन्यदेव अनादि-अनन्त...** चैतन्यदेव सर्वोत्कृष्ट महिमा का भण्डार **परमपारिणामिक -भाव में स्थित है।** परमस्वभाव त्रिकाली में स्थित है। वह पर्याय में भी आता नहीं। क्या कहा, समझ में आया? त्रिकाल परमपारिणामिकस्वभाव। आहाहा! जो अनादि-अनन्त महा भण्डार, वह अपनी पर्याय में भी आता नहीं। वह तो पंचम पारिणामिकस्वभाव, सहज

त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव, उसमें स्थित है। तू मान तो भी ऐसा है, न मान तो भी ऐसा स्थित है। आहाहा! आहाहा!

परमपारिणामिकभाव में स्थित है। भाव लिया है। काल तो अनादि-अनन्त। क्षेत्र तो अपने में है, भाव यह है। आहाहा! द्रव्य तो वस्तु है, क्षेत्र अपने में असंख्य प्रदेश है, काल अनादि-अनन्त, भाव परमपारिणामिकभाव। आहाहा! इसमें मैं स्थित हूँ। अनादि-अनन्त परमपारिणामिकभाव में स्थित हूँ। आहाहा! अभी तो भविष्य आया नहीं है न? भूतकाल तो चला गया न? चला गया और नहीं आया हो, मैं तो अनादि-अनन्त (हूँ)। आदि और अन्त बिना अपना पंचम पारिणामिकस्वभाव, जो सर्वोत्कृष्ट गुण का भण्डार है, उसमें स्थित हूँ। आहाहा! कितनों ने तो यह भाषा सुनी न हो सम्प्रदाय में। आहा..! और विरोध करे।

मैं अस्ति वस्तु। मैं अस्ति-वस्तु। अनादि-अनन्त काल। अपने क्षेत्र में, पंचम पारिणामिकभाव में स्थित। आहाहा! गजब बात! ऐसा पर्याय निर्णय करती है। पंचम भाव में कहाँ (निर्णय करना है?)। आहाहा! मैं मेरे क्षेत्र में अनादि-अनन्त काल में... आहाहा! परम ज्ञायक पंचमभाव, ज्ञायकभाव उसमें मैं स्थित हूँ। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव चार आ गये। आहाहा! ऐसी चीज़ के समक्ष कौन-सी चीज़ की महिमा करे? आहाहा! ऐसा प्रभु... आहाहा! **परमपारिणामिकभाव में स्थित है।** कौन? **सर्वोत्कृष्ट महिमा का भण्डार चैतन्यदेव...** आहाहा! वह मैं। आहाहा!

मुनिराज ने (नियमसार के टीकाकार श्री पद्मप्रभमलधारिदेव ने) इस परम-पारिणामिकभाव की धुन लगायी है। नियमसार दोपहर को पढ़ते हैं न। आहाहा! क्या उसमें परमपारिणामिकभाव को गाया है! आहाहा! वहाँ तक लेंगे, अभी आज आयेगा। परमपारिणामिकभाव आधार और द्रव्य आधेय। ऐई..! क्या कहा? उसमें आयेगा। द्रव्य अर्थात् वस्तु-गुण, गुण। वहाँ द्रव्य कहा। त्रिकाली वस्तु है न। त्रिकाली गुणों का आधेय और उसका आधार पंचम पारिणामिकभाव। आहाहा! त्रिकाली परमभाव के आधार से वह गुण है। आहाहा! कोई पर्याय के आधार से या राग के आधार से, निमित्त के आधार से वह गुण है नहीं। आहाहा! ऐसा महिमावन्त आत्मा सुना नहीं है। आहाहा! अरे..! जीव को स्वयं की जाति को छोड़कर दूसरे की महिमा का पार नहीं। आहाहा! एक कपड़ा अच्छा

आये तो.. आहाहा! जरीवाली अच्छी.. ओहोहो! पूरणपोली और लड्डू, पत्तरवेलिया के पकोड़े धीमें तले हुए आये (तो) प्रसन्न-प्रसन्न हो जाए। अरे..! प्रभु! क्या है? प्रभु! वह तो मिट्टी है न। वह तो जड़ है न। आहाहा! तेरे गुणभण्डार के आगे वह तो जड़ है, प्रभु! आहा..! उसकी तो कोई कीमत नहीं है। आहाहा! तेरे एक-एक गुण की पर्याय की कीमत का पार नहीं। तो तेरे द्रव्य-गुण की कीमत की तो क्या बात करनी! आहाहा!

ऐसास जो भगवान.. आहाहा! उसे पद्मप्रभमलधारिदेव ने **इस परमपारिणामिक भाव की धुन लगायी है।** जहाँ-तहाँ कारणपरमात्मा, कारणपरमात्मा, कारणपरमात्मा। आहाहा! कारणजीव, लो - ऐसा शब्द लिया है। पद्मप्रभमलधारिदेव। आहाहा! कारणजीव। यह क्या? कारणजीव और कार्यजीव? कहीं शब्द सुने न हो। त्रिकाली भगवान परमात्मा अनादि-अनन्त गुण का भण्डार, परिपूर्ण गुण का भण्डार वह कारणजीव, वह कारणजीव, वह कारण आत्मा, वह कारणपरमात्मा, कारणभगवन्त। उसमें से पर्याय पूर्ण प्रगट हो सर्वज्ञ परमात्मा की, वह कार्यपरमात्मा, वह कार्यजीव। वह कारणजीव, यह कार्यजीव। आहाहा!

जीव में कारण और कार्य। दूसरी चीज़ कारण और आत्मा कार्य, वह तो दूर रह गया। अथवा आत्मा कारण और दूसरी वस्तु कार्य, आत्मा करे और बनाये। आहाहा! वह तो कुछ है ही नहीं। एक चीज़ दूसरी चीज़ को छूती नहीं तो करे किसको? आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, तेरा भगवान कारणजीव.. आहाहा! जिसे कारण पारिणामिक कहा, कारण पारिणामिकस्वभाव। कारण परमपारिणामिकस्वभाव। आहाहा! उसकी धुन लगायी है, नियमसार में। जगह-जगह गाथा में कारणपरमात्मा, कारणपरमात्मा... उसे बताने को कारणअजीव, कारणपरमाणु ऐसा पाठ लिया है। कारणपरमाणु और कार्यपरमाणु। प्रत्येक स्कन्ध कारण, इसलिए कारणपरमाणु। और स्कन्ध में से भिन्न पड़ जाए, वह कार्यपरमाणु। आहाहा! यह कारणपरमात्मा त्रिकाल और उसकी पर्याय पूर्ण हो जाए, वह कार्यपरमात्मा, वह कार्यजीव। आहाहा! अरेरे..! जीव की व्याख्या सुनी न हो।

ऐसा आत्मा तीन लोक के नाथ परमात्मा वीतरागदेव कहते हैं। प्रभु! मैं हूँ उतना ही तू है। आहाहा! मात्र वस्तु अलग है। बाकी मैं हूँ, उतना ही तू है और तू है, उतना ही मैं हूँ। आहाहा! आहाहा! मुझमें और तेरे में अन्तर नहीं है, प्रभु! पर्याय में तूने अन्तर किया

है, अब छोड़ दे। मुझसे तूने पर्याय में अन्तर किया, प्रभु! वह अन्तर छोड़ दे। वह फर्क छोड़ने की ताकत तुझमें है। आहाहा! और मेरे में जो अनन्त पर्यायें हुई, ऐसी तेरे में अनन्त होगी, ऐसा सामर्थ्य तेरे में है। आहाहा! ऐसा आत्मा। कहा न?

यह पंचम भाव पवित्र है,... आहाहा! उदयभाव रागादि है, वह तो अपवित्र है। दूसरे चार भाव पवित्र है, परन्तु एक समय की स्थिति। भले क्षायिकभाव हो, परन्तु एक समय की स्थिति है। आहाहा! यह परमपारिणामिक भाव त्रिकाली भगवान आदि और अन्त बिना की चीज... आहाहा! पवित्र है। महापवित्र है। **महिमावन्त है।** आहाहा! अन्दर पूर्ण चीज है, वह पवित्र है और महा महिमावन्त है। आहाहा! **उसका आश्रय करने से...** उसका आश्रय करने से, उस ओर जाने से, उसका अवलम्बन लेने से **शुद्धि के प्रारम्भ से लेकर...** शुद्धि की शुरुआत वहाँ से होती है। आहाहा! परिपूर्ण पंचम पारिणामिकभाव, परम पारिणामिकभाव के आश्रय से शुद्धि उत्पन्न होती है। समकित की उत्पत्ति वहाँ से होती है। आहाहा! समकित की उत्पत्ति का वह बहुत कहता था न? कान्ति ईश्वर, मुम्बईवाला। पत्र निकालता है न। उसमें बहुत लिखता था, शुभभाव से ऐसा होता है, ऐसा होता है, ऐसा होता है। लेकिन इस बार सुना, **पस्सदि जिणसासणं** एक घण्टा उसकी व्याख्या सुनी। उसके बाद वह स्वयं बोला बेचारा, महाराज! हमें भाव दिगम्बर आपने बनाया। हम द्रव्य दिगम्बर-सम्प्रदाय के दिगम्बर थे। उसने विरोध किया था, निन्दा करता था मासिक पत्र में। लोग बैठे थे और बोला था। मुझे-हमें भावदिगम्बर बनाया। हमारा द्रव्यदिगम्बररूप में जन्म था। परन्तु दिगम्बर क्या चीज़ है? दिगम्बर कोई पक्ष या सम्प्रदाय नहीं है। कोई पन्थ नहीं है। आहाहा! यह तो वस्तु का स्वरूप है। यह क्या कहते हैं? यह तो वस्तु का स्वरूप है।

पंचम पारिणामिकभाव, और उसकी परिणति, वह जैनशासन। आहाहा! यह जैनशासन पर्याय है। जैनशासन गुण-द्रव्य नहीं। आहाहा! क्या कहा समझे? धर्म कहो या जैनशासन, वह पर्याय है। वह पंचम पारिणामिकभाव नहीं। पंचम पारिणामिकभाव के आश्रय से प्रगट हुई पर्याय, वह जैनशासन है। आहाहा! उसे कोई शुभभाव या फलाने संहनन की जरूरत है, ऐसा नहीं है। ऐसा भगवान पूर्ण शक्ति और सत्तावान, पूर्ण सत्तावान.. आहाहा! पूर्ण सत्तावाला। प्रत्येक गुण में पूर्ण सत्तावाला। आहाहा! उसकी जो पूर्ण पर्याय

हो, उसको परमात्मा-कार्यपरमात्मा कहते हैं। आहाहा! इस दशा को कारणपरमात्मा (कहते हैं)। पूर्ण परमात्मा शक्तिवन्त महाभगवान भण्डार कारणपरमात्मा है। उसके अवलम्बन से, उसके आश्रय से केवलज्ञान आदि होता है, वह कार्यपरमात्मा है। आहाहा! ऐसी पद्मप्रभमलधारिदेव ने धुन लगायी है।

मुमुक्षु :- रहस्य तो आपने खोला।

पूज्य गुरुदेवश्री :- आहाहा! **पंचम भाव पवित्र है, महिमावन्त है। उसका आश्रय करने से शुद्धि के प्रारम्भ से...** शुद्धि-सम्यग्दर्शन की शुद्धि के प्रारम्भ से, त्रिकाली के आश्रय से शुरुआत होती है। आहाहा! बाकी कोई क्रियाकाण्ड से शुरुआत होती नहीं। आहाहा! ऐसा कठिन लगता है। **उसका आश्रय करने से शुद्धि के प्रारम्भ से...** शुद्धि की प्रारम्भता। शुभ-अशुभ शुद्धि नहीं है। शुभभाव और अशुभभाव, वह शुद्धि नहीं है। आहाहा! **शुद्धि के प्रारम्भ से लेकर पूर्णता प्रगट होती है।** केवलज्ञान उसके अवलम्बन से उत्पन्न होता है। सम्यग्दर्शन उसके अवलम्बन से, सम्यग्ज्ञान उसके अवलम्बन से, सम्यक्चारित्र उसके अवलम्बन से, शुक्लध्यान उसके अवलम्बन से, केवलज्ञान उसके अवलम्बन से (प्रगट होता है)। आहाहा! जो कोई पूर्ण दशा, प्रारम्भ से लेकर पूर्णता प्रगट होती है। आहाहा! उसके सिवा कोई आश्रय करने लायक नहीं है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)